अर्थशास्त्र : मार्क्स और लोहिया से आगे. लेखक सुनील

[लेखक समाजवादी जनपरिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा अर्थशास्त्री हैं | डा. राममनोहर लोहिया की प्रसिद्ध पुस्तक Marx , Gandhi and Socialism का एक अध्याय है-Economics after Marx |प्रस्तुत आलेख उसके आगे का कथन है |]

मानव इतिहास के हर दौर में दुनिया को बदलने और बेहतर बनाने की कोशिशें हुई हैं। ऐसी हर कोशिश के पीछे दुनिया की मौजूदा व्यवस्था और विकास की एक समझ रहती है। मार्क्स और गांधी आधुनिक युग के दो प्रमुख विचारक रहे हैं जिनकी सोच व समझ परिवर्तनकर्मियों के लिए प्रेरणा और शक्ति का स्रोत रही है । डॉ. राममनोहर लोहिया जिनकी जन्म शताब्दी इस वर्ष मनायी जाने वाली है , को मार्क्स और गांधी के बीच एक वैचारिक पुल बनाने वाला माना ज सकता है ।

कार्ल मार्क्स ने हमे बताया कि किस प्रकार पूंजीवाद का पूरा ढाँचा मजदूरों के शोषण पर टिका है । मजदूर की मेहनत से जो पैदा होता है , उसका एक हिस्सा ही उसको मजदूरी के रूप में दिया जाता है । शेष हिस्सा 'अतिरिक्त मूल्य' होता है , जो पूँजीपति के मुनाफे का आधार होता है । यही मुनाफा पूँजीवादी विकास का आधार होता है । मार्क्स ने कल्पना की थी कि औद्योगीकरण के साथ बड़े बड़े कारखानों में बहुत सारे मजदूर एक साथ काम करेंगे । वर्ग चेतना के विकास के साथ वे संगठित होंगे , ज्यादा मजदूरी पाने के लिए आन्दोलन करेंगे । लेकिन मुनाफा और मजदूरी एक साथ नहीं बढ़ सकते । यही वर्ग संघर्ष बढ़ते बढ़ते क्रांति का रूप ले लेगा और तब समाजवाद आएगा । मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि पश्चिम यूरोप जहाँ पूँजीवादी औद्योगीकरण सबसे पहले व ज्यादा हुआ है , वहीं क्रांति सबसे पहले होगी ।

किन्तु मार्क्स की भविष्यवाणी सही साबित नहीं हुई । क्रांति हुई भी तो रूस में , जो अपेक्षाकृत पिछड़ा , सामंती और कम औद्योगीकृत देश था । इसके बाद चीन में क्रांति हुई , वहाँ तो औद्योगीकरण नहीं के बराबर हुआ था । चीन की क्रांति तो पूरी की पूरी किसानों की क्रांति थी , जबकि मार्क्स की कल्पना थी कि सर्वहारा मजदूर वर्ग क्रांति का अगुआ होगा । पश्चिमी यूरोप में पूँजीवादी औद्योगीकरण के दो सौ वर्ष बाद भी क्रांति नहीं हुई । पूँजीवाद भी इस दौर में नष्ट होने के बजाए , संकटों को पार करते हुए , फलता फूलता गया ।

मार्क्सवाद की इस उलझन को सुलझाने का एक सूत्र तब मिला जब १९४३ में डॉ. राममनोहर लोहिया का निबन्ध 'अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे' प्रकाशित हुआ । इसे दुनिया के गरीब पिछड़े मुल्कों के नजरिए से

मार्क्सवाद की मीमांसा भी कहा जा सकता है। लोहिया ने बताया की पूंजीवाद का मूल आधार पूंजीवादी देशों में पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण नहीं बल्कि उपनिवेशों के किसानों ,कारीगरों और मजदूरों का शोषण है। यही 'अतिरिक्त मूल्य' का मुख्य स्रोत है। इसीके कारण पूंजीवादी देशों में मुनाफा मजदूरी का द्वन्द्व टलता गया , क्योंकि दुनिया के विशाल औपनिवेशिक देशों की लूट का एक हिस्सा पूंजीवादी देशों के मजदूरों को भी मिल गया। यह संभव हुआ कि मजदूरी और मुनाफा दोनों साथ साथ बढ़ें। इसीलिए पश्चिमी यूरोप में क्रांति नहीं हुई। इसी के साथ लोहिया ने लेनिन की इस बात को भी काटा कि साम्राज्यवाद पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था है। लोहिया ने कहा कि पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का प्रारंभ और विकास एक साथ हुआ। बिना साम्राज्यवाद के पूंजीवाद का विकास हो ही नहीं सकता। मार्क्स की ही एक शिष्या रोजा लक्समबर्ग की तरह लोहिया ने बताया कि पूंजीवाद के विकास के लिए एक बाहरी उपनिवेश जरूरी है , जहाँ के बाजारों में माल बेचा जा सके और जहाँ से सस्ता कच्चा माल और सस्ता श्रम मिल सके। इसी विश्लेषण के आधार पर लोहिया ने कहा कि असली सर्वहारा तो तीसरी दुनिया के किसान मजदूर हैं। वे ही पूंजीवाद की कब्र खोदेंगे।

जब लोहिया ने यह निबंध लिख तब दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था और उसके पहले जबरदस्त मंदी का दौर आ चुका था। पूंजीवाद के संकटों को समझने के लिए भी लोहिया ने एक नई दृष्टि दी। कीन्स और मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों के मुताबिक पूंजीवादी देशों की उत्पादन क्षमता और मांग या क्रय शक्ति के अंतर से ये संकट आते हैं। लोहिया के मुताबिक सिर्फ इतना कहना अर्ध सत्य है। इन संकटों का असली स्रोत साम्राज्यवादी प्रक्रिया में है। लोहिया के शब्दों में , ' उत्पादन के पुराने तरीके से किसी साम्राज्यवादी क्षेत्र की शोषण - सीमा के समाप्त होने पर आर्थिक संकट उत्पन्न होता है , जो किसी नये क्षेत्र की खोज के उपरान्त समाप्त होता है , जहाँ नये आविष्कारों का उपयोग किया जा सके।'

इसी विश्लेषण के आधार पर लोहिया ने उस निबंध में कहा कि चूंकि पूरी दुनिया को उपनिवेश बनाया जा चुका है , अब कोई नया भूभाग उपनिवेश बनाने के लिए बचा नहीं है, पूंजीवाद स्थाई संकट की अवस्था में पहुंच गया है। इसकी वृद्धि का मार्ग बन्द हो चुका है , इसकी सीमा आ चुकी है। या तो यह टूट जायेगा या धन के निम्न स्तर पर स्थायित्व प्राप्त कर लेगा। पूंजीवाद के सिरमौर के रूप में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उदय और पश्चिमी यूरोप की जगह लेने को लोहिया नोट करते हैं लेकिन उसके नेतृत्व में पूंजीवाद के संकट का हल हो सकेगा ,इसमें वे गहरी शंका जाहिर करते हैं।

जाहिर है लोहिया का यह निष्कर्ष गलत साबित हुआ। पूंजीवाद ज्यादा दीर्घायु और ज्यादा स्थायी साबित हुआ तथा कई संकटों को पार कर गया। मार्क्स की ही तरह लोहिया की भविष्यवाणी भी गलत साबित हुई। दरअसल , इस निबन्ध को वे पचीस तीस साल बाद लिखते तो आसानी से देख लेते कि

उपनिवेशों के आजाद होने के साथ औपनिवेशिक शोषण तथा साम्राज्यवाद खतम नहीं हुआ , बल्कि उसने नव-औपनिवेशिक रूप धारण कर लिया । अंतरराष्ट्रीय व्यापार , अंतरराष्ट्रीय कर्ज , विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विस्तार के जरिए यह शोषण चलता ही नहीं रहा बल्कि बढ़ता गया । सुदूर क्षेत्रों तक घुसपैठ व कमाई के जरिए पूंजीवाद को मिले । नतीजतन पूंजीवाद फलता फूलता गया । भूमंडलीकरण का नया दौर इसी नव औपनिवेशिक शोषण को और ज्यादा बढ़ाने के लिए लाया गया है ।

औपनिवेशिक प्रक्रिया का एक और रूप सामने आया है । वह है आंतरिक उपनिवेशों का निर्माण । सच्चिदानन्द सिन्हा जैसे समाजवादी विचारकों ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है । दुनिया के गरीब देशों में जो सीमित औद्योगीकरण हुआ है , वह इसी प्रक्रिया के साथ हुआ है । जब बाहरी उपनिवेश बनाना संभव नहीं होता , तो पूंजीवादी विकास देश के अंदर ही उपनिवेश बनाता है । जैसे भारत के पिछड़े एवं आदिवासी इलाके एक तरह के आंतरिक उपनिवेश हैं । पूर्व सोवियत संघ के एशियाई हिस्से भी आंतरिक उपनिवेश ही थे । आंतरिक उपनिवेश सिर्फ भौगोलिक रूप में होना जरूरी नहीं है । अर्थव्यवस्था एवं समाज के विभिन्न हिस्से भी आंतरिक उपनिवेश की भूमिका अदा कर सकते हैं । जैसे गांवों और खेती को पूंजीवादी व्यवस्था में एक प्रकार का आंतरिक उपनिवेश बना कर रखा गया है , जिन्हें वंचित ,शोषित और कंगाल रख कर हे उद्योगों और शहरो का विकास होता है । भारत जैसे देशों का विशाल असंगठित क्षेत्र भी एक प्रकार का आंतरिक उपनिवेश है जिसके बारे में सेनगुप्ता आयोग ने हाल ही में बताया कि वह २० रुपये रोज से कम पर गुजारा करता है । लेकिन यह भी नोट करना चाहिए कि पूंजीवादी विकास की औपनिवेशिक शोषण की जरूरत इतनी ज्यादा है कि सिर्फ आंतरिक उपनिवेशों से एक सीमा तक , अधकचरा औद्योगीकरण ही हो सकता है । भारत इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है , जहाँ औद्योगीकरण की एक सदी के बावजूद देश का बहुत बड़ा हिस्सा बहिष्कृत और हाशिए पर है तथा देश की श्रम शक्ति का ८ फीसदी भी संगठित क्षेत्र में नहीं लग पाया है ।

इस प्रकार नव औपनिवेशिक शोषण एवं आतंरिक उपनिवेश की इन प्रक्रियाओं से पूंजीवाद ने न केवल अपने को जिन्दा रखा है , बलिक बढ़ाया व फैलाया है । लेकिन इससे लोहिया की मूल स्थापना खारिज नहीं होती हैं , बल्कि और पुष्ट होती हैं । वह यह कि पूंजीवाद के लिए देश के अंदर कारखानों खदानों के मजदूरों का शोषण पर्याप्त नहीं है । इसके लिए शोषण के बाहरी स्रोत जरूरी हैं । उपनिवेश हों , नव उपनिवेश हों या आंतरिक उपनिवेश हों उनके शोषण पर ही पूंजीवाद टिका है । साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद पूंजीवाद के अनन्य सखा सहोदर हैं । इसीसे यह निष्कर्ष भी निकलता है आधुनिक औद्योगिक पूंजीवादी विकास कभी भी सब के लिए खुशहाली नहीं ला सकता है । बड़े हिस्से की कीमत पर कुछ लोगों का ही विकास हो सकता है । यदि दुनिया के सारे इलाकों और सारे लोगों को विकास चाहिए तो पूंजीवाद का विकल्प खोजना होगा ।

पूंजीवाद का एक और आयाम है ,जो तेजी से उभर कर आ रहा है। धरती का गरम होना , बढ़ता प्रदूषण , नष्ट होती प्रजातियां , पर्यावरण का बढ़ता संकट, प्राकृतिक संसाधनों के बढ़ते संघर्ष आदि इस बात की ओर इंगित कर रहे हैं कि पूंजीवादी विकास में प्रकृति भी एक महत्वपूर्ण कारक है। जैसे श्रम का अप्रत्यक्ष (औपनिवेशिक) शोषण पूंजीवाद में अनिवार्य रूप से निहित है , वैसे ही प्रकृति के लगातार बढ़ते दोहन और शोषण के बिना पूंजीवादी विकास नहीं हो सकता। जैसे जैसे पूंजीवाद का विकास और विस्तार हो रहा है प्रकृति के साथ छेड़छाड़ और एक तरह का अघोषित युद्ध बढ़ता जा रहा है। जिन पारंपरिक समाजों और समुदायों की जिन्दगियां प्रकृति के साथ ज्यादा जुड़ी हैं जैसे आदिवासी , पशुपालक , मछुआरे , किसान आदि उनके ऊपर भी हमला बढ़ता जा रहा है। पूंजीवाद के महल का निर्माण उनकी बलि देकर किया जा रहा है।

पिछले दिनों भारत में नन्दीग्राम , सिंगूर , कलिंगनगर आदि के संघर्षों ने औद्योगीकरण की प्रकृति व जरूरत पर एक बहस खड़ी की , तो कई लोगों को इंग्लैंड में पूंजीवाद की शुरुआती घटनाओं की याद आईं जिसे कार्ल मार्क्स ने 'पूंजी का आदिम संचय' नाम दिया था। दोनों में काफ़ी समानतायें दिखाई दे रही थीं। इंग्लैंड में तब बड़े पैमाने पर किसानों को अपनी जमीन पर से बेदखल किया गया था , ताकि ऊनी वस्त्र उद्योग हेतु भेड़पालन हेतु चारागाह बनाये जा सकें और बेदखल किसानों से बेरोजगारों की सस्ती श्रम – फौज , नये उभर रहे कारखानों को मिल सके। कई लोगों ने कहा कि भारत में वही हो रहा है। लेकिन मार्क्स के मुताबिक तो वह पूंजीवाद की प्रारंभिक अवस्था थी। क्या यह माना जाए कि भारत में पूंजीवाद अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है। यह कब परिपक्व होगा ?

इस सैद्धान्तिक अन्तर्विरोध का हल खोजने की कोशिश में हम एक नये सत्य पर पहुचते हैं। दरअसल पूंजीवाद का तीन – चार सौ सालों का पूरा इतिहास देखें, तो वह लगातार प्राकृतिक संसाधनों पर बलात कब्जा करने और उससे लोगों को बेदखल करने का इतिहास है। एशिया व अफ्रीका के देशों को उपनिवेश बनाने के पीछे वहाँ के श्रम के साथ साथ वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों की लूट का आकर्षण प्रमुख रहा है। दोनों अमरीकी महाद्वीपों और ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप के मूल निवासियों को नष्ट करके वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की लालसा ही यूरोपीय गोरे लोगों को वहाँ खींच लाई। जिसे मार्क्स ने 'पूंजी का आदिम संचय' कहा है वह दरअसल पूंजीवाद की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसके बगैर भी पूंजीवाद चल नहीं सकता। मजदूरों के शोषण की तरह प्राकृतिक संसाधनों की लूट भी पूंजी के संचय का अनिवार्य हिस्सा है।

पूंजीवादी औद्योगीकरण एवं विकास के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तरीके से कितने बड़े पैमाने पर जंगल नष्ट किया गया , कितने बड़े पैमाने पर जमीन की जरूरत है , कितने बड़े पैमाने पर पानी की जरूरत है , कितने बड़े पैमाने पर खनिज निकालना होगा , कितने बड़े पैमाने पर उर्जा चाहिए – ये बातें अब धीरे धीरे साफ़ हो रही हैं और उनका अहसास बढ़ रहा है। यदि यह पूंजीवाद की अनिवार्यता है तो पूंजीवाद

के विश्लेषण में इन्हें शामिल करना होगा। जो मूल्य का श्रम सिद्धान्त मार्क्स ने अपनाया वह इसमें बाधक होता है। श्रम के शोशण को समझने और उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम के महत्व को बताने के लिए तो यह सिद्धान्त ठीक है , किन्तु प्राकृतिक संसाधनों का इसमें कोई स्थान नहीं है। ऐसा शायद इसलिए भी है कि प्राकृतिक संसाधनों को प्रकृति का मुफ्त उपहार मान लिया जाता है। लेकिन सच्चाई यह है कि प्रकृति को बड़े पैमाने पर लूटे बगैर तथा उस पर निर्भर समुदायों को उजाड़े-मिटाये बगैर पूंजीवादी व्यवस्था के मूल्य का सृजन हो ही नहीं सकता। 'अतिरिक्त मूल्य' का एक स्रोत श्रम के शोषण में है, तो एक प्रकृति की लूट में भी। जिसे पूंजीवादी मुनाफा कहा जाता है उसमें प्राकृतिक संसाधनों पर बलात कब्जे , एकाधिकार और लूट से उत्पन्न 'लगान' का भी बड़ा हिस्सा छिपा है। प्राकृतिक संसाधनों की यह लूट को नवौपनिवेशिक शोषण या आन्तरिक उपनिवेश की लूट से स्वतंत्र नहीं है , बल्कि उसीका हिसा है। शोषण व लूट के इस आयाम को पूंजीवाद के विश्लेषण के अंदर शामिल करना जरूरी हो गया है। मार्क्स और लोहिया के समय यह उभर कर नहीं आया था। इसलिए अब पूंजीवाद के समझने के अर्थशास्त्र को मार्क्स और लोहिया से आगे ले जाना होगा। गांधीजी जो शायद ज्यादा दूरदर्शी व युगदृश्टा थे इसमें हमारे मददगार हो सकते हैं।

पूंजीवाद एक बार फिर गहरे संकट में है। वित्तीय संकट , विश्वव्यापी मन्दी और बेरोजगारी आदि इसका एक आयाम है। यह भी गरीब दुनिया के मेहनतकश लोगों के फल को हड़पने के लिए शेयर बाजार , सट्टा , बीमा , कर्ज का व्यापार जैसी चालों का नतीजा है जिसमें कृत्रिम समृद्धि का एक गुब्बारा फुलाया गया था। वह गुब्बारा फूट चुका है। लेकिन इस संकट का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम पर्यावरण का संकट , भोजन का संकत और प्राकृतिक संसाधनों का संघर्ष है। दुनिया के अनेक संघर्ष जल, जंगल , जमीन , तेल और खनिजों को ले कर हो रहे हैं। इन संकटों से पूंजीवादी विकास की सीमाओं का पता चलता है। इन सीमाओं को समझकर , पूंजीवाद की प्रक्रियाओं का सम्यक विश्लेषण करके , उस पर निर्णायक प्रहार करने का यह सही मौका है। यदि हम ऐसा कर सकें तो जिसे 'इतिहास का अंत' बताया जा रहा है , वह एक नये इतिहास को गढ़ने की शुरुआत हो सकता है।

———-~~~~~~~~———

कृपया आलेख प्रकाशित होने पर कतरन एवं पारिश्रमिक निम्न पते पर भेजें -
सुनील ,समाजवादी जनपरिषद ,ग्रा?पो. केसला,वाया इटारसी,जि होशंगाबाद,(म.प्र.) ४६११११
सुनील का ई-पता sjpsunilATgmailDOTcom